सनातन धर्म का विज्ञान

अंजना शर्मा
प्रबन्धक - देवस्थान विभाग
राजस्थान सरकार

ऋषियो के द्वारा पुराणों में सनातन धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप मिलता है, जिसे धर्म में रखकर महर्षियों ने इस विज्ञान को आम जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है, आज आवश्यकता है इसे पुराणों से निकाल कर शोध के माध्यम से सामने लाने की कुछ तथ्य इस लेख के माध्यम से प्रस्तुत कर रही हूँ।

(१) अश्वत्थ का महत्त्व

हमारे हिन्दु धर्मशास्त्रों में अश्वत्थ (पीपल) की महिमा बतायी गयी है। अथर्ववेद की शौनक संहिता में लिखा हैं:- 'अश्वत्थों देवसदन' (शौ. सं. ५/४/१) पीपल को देवताओं का घर ही कहा है। अतएव उसकी पूजा से भी देवताओं की पूजा होती है। 'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां' (गीता १० / २६) कहकर भगवान् कृष्ण ने भी पीपल को अपनी विभूति स्वीकार किया है। उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को अश्वत्थ का प्रतिरूप माना है (देखिये गीता का पुरुषोत्तम योग) ।अश्वत्व का ज्ञान से भी बहुत निकट का सम्बन्ध है। पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान जप या मंत्रपाठ करने पर शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। महाज्ञानी काकभुशुण्डिजी पीपल के नीचे ही ध्यान एवं जप करते थे । तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस' में लिखा है- "पीपर तरुतर ध्यान सो धरड़ी"हिन्दुधर्म के अनुसार विष्णु के २३ वें अवतार भगवान बुद्ध को भी ज्ञान की प्राप्ति अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही हुई थी। इससे पूर्व छठे अवतार दत्तात्रेय जी भी अश्वत्थ के नीचे ध्यान लगाया करते थे इस बात का उल्लेख शास्त्रों में मिलता है।आयुर्वेद जो कि ऋग्वेद का उपवेद है, में भी अश्वत्थ की महिमा सबसे बढ़कर कही गई है। लौकिक दृष्टि से पीपल का वृक्ष पुत्रप्रदाता माना गया है। स्त्री के बन्ध्यात्वदोष को हटाने की इसके बीजों में अद्भुत क्षमता है।

(२) तुलसी का महत्त्व

अश्वत्थ की भाँति ही तुलसी का भी महत्त्व कम नहीं है। पौराणिकों के अनुसार राधा ही पृथ्वी पर तुलसी के रूप में उत्पन्न हुई थी अतः देव- मंदिरों में तुलसी का प्रयोग अवश्य किया जाता है। शास्त्रों में तुलसी के बारे में लिखा है:- "तुलसी काननं चैव गृहेयस्यावतिष्ठते । तद्गृहं तीर्थभूतं हि नायान्ति यमकिंकराः ॥"तुलसी के आसपास का स्थान पवित्र

माना गया है। उसमें मलेरिया की विषाक्त वायु को दूर करने की अद्भूत क्षमता है। मृत्यु के समय भी तुलसीमिश्रित गंगाजल पिलाया जाता है जिससे आत्मा पवित्र होकर सुखशांति से लोकान्तर की प्राप्ति करें।तुलसी की गन्धमात्र से ही मलेरिया के उपजीवी दूर भागते हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी सब प्रकार के ज्वरों को हटाकर स्वास्थ्य प्रदान करती है। वैज्ञानिकों के अनुसार तुलसी का पौधा सर्वाधिक मात्रा में ऑक्सीजन छोड़ता है जो जीवों के लिए लाभकारी है अतः तुलसी की रक्षा करनी चाहिए।जिन रोगियों को स्वास्थ्यलाभार्थ गंगातट के पास जाने में असुविधा हो, उन्हें तुलसी सेनेटोरियम में रखा जाता है। वही लाभ उन्हें वहाँ मिल जाता है। आयुर्वेद के अनुसार तुलसी के बीज पुंस्त्व (वीर्य) वर्द्धक माने गये हैं।

(३) देवमंदिर में जाने का महत्त्व

जहाँ देवपूजा लक्ष्य होती है वहाँ शारीरिक तथा मानसिक लाभ अवश्य होता है। देवालय जाने के लिए हम सूर्योदय से पहले उठते हैं तथा सूर्योदय से पूर्व ही स्नान करते हैं। इससे रूप, तेज, आरोग्य, मेघा, आयु आदि की वृद्धि होती है। देवमंदिर प्रायः शहर के बाहर होते हैं। वहाँ कोई बगीची होती है। देवपूजा के लिए जब हम वहाँ जाते हैं तो हमें शुद्ध वायु मिलती है जिससे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्ति का लाभ भी मिलता है।देवमंदिरों में चंदन लगाने की प्रथा है। चंदन लगाने से मानसिक आरोग्य बना रहता है तथा नियमित चंदन लगाने वाले मनुष्य को कभी नेत्र रोग नहीं होते, यह एक वैज्ञानिक रहस्य है। इसी प्रकार वहाँ धूप, दीप आदि सुगन्धित द्रव्यों के कारण मंदिर के चारों और दिव्य शक्ति का संचार रहता है, जिससे भूत बाधा की निवृत्ति तथा विषाक्त कीटाणु शक्ति का ह्रास होता है, शुद्ध वायुमंडल के प्रभाव से कुविचार अंदर नहीं रह पाते है।पुरुष शरीर पाँच तत्वों से बना होता है भिन्न-भिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न तत्त्वों की प्रधानता रहा करती है। इसीलिए हमारे हिन्दुधर्म में प्रमुख पाँच देवताओं (सूर्य, शिव, विष्णु, दुर्गा और गणेश) की पूजा कहीं गई है।ये पाँचों देवता एक-एक तत्त्व को क्रमशः प्रधानता के कारण धारण करते हैं। इधर तत्त्वविशेष को धारण करने वाले सांसारिक जीव पर उसके पूजन का अनुकूल प्रभाव होने से जीव को शुभफल प्राप्त होता ही है।

(४) चरणामृत का वैज्ञानिक महत्त्व

देवमंदिर में जाकर चरणामृत गृहण करना भी हमारे लिए अत्यंत लाभकारी है। चरणामृत को शास्त्रों में "अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनं" कहा गया है। चरणामृत हमारे लिए दिव्य औषधि का काम देता है। चरणामृत प्राय: शालगृह को स्नान करवाने पर बनता है। शालीगृह गंडकी नदी के पत्थर का बना होता है इस पत्थर में रोगनाश की

अद्भुत क्षमता होती हैं। इससे पानी का स्पर्श होने पर वह पानी रोगनाशी हो जाता है। चरणामृत की रोगरोधक क्षमता को रोके रखने के लिए ही उसे ताँबे के पात्र में रखा जाता है इसी चरणामृत में केसर अथवा कस्तूरी भी डालते हैं जिन्हें आयुर्वेद में 'जीवदा' और 'बलदा' कहा गया है।पुजारी लोग इसी चरणामृत को शंख में डालकर पुनः पवित्र कर लेते हैं। शंख में डालने पर इसमें एक और विशेषता आ जाती है कि यह दन्तरोगों को दूर करता है कुल मिलाकर चरणामृत को नियमित ग्रहण करने वाले मनुष्य की कदाचित् अकालमृत्यु नहीं होती तथा उसे मुख, दंत एवं पेट के रोग नहीं होते। पुराण का वचन है- 'विष्णुपादोदकं पीत्वा पापैरत्र विमुच्यते।

यह बात केवल अर्थवान नहीं अपितु नितान्त सत्य है तथा भक्तिभावपूर्वक इसे ग्रहण करने पर तो इसकी उक्त सामर्थ्य अवश्य क्रियावान् होकर साधक को सभी प्रकार का लाभ प्रदान कराती है।

(५) शंखनाद का महत्त्व

श्री जगदीशचन्द्र वसु ने अपने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया था कि जहाँ तक शंखनाद जाता है वहाँ तक के अनेक विषाक्त कीटाणु नष्ट होकर वायुमंडल स्वच्छ हो जाता है। हमारे पूर्वज भी कहते थे- "शंख बाजे भूत भागे "

कीटाणु भी सूक्ष्मभूतों के अन्तर्गत होते हैं। गूंगों को भाषण शक्ति प्रदान करता है इसलिए छोटे-छोटे बच्चों के गले में शंखों की माला पहनायी जाती है इससे बच्चे जल्दी बोलने लगते हैं, उन्हें दृष्टिदोष भी नहीं होता। इसी प्रभाव के कारण मंदिरों में शंख से जल को छिड़का जाता है।

यूरोपीय वैज्ञानिकों ने भी शंख में मनुष्यहितकारिणी विद्युत मानी हैं। शंख में यदि गंगाजल को सिद्ध करके पिलाया जाय तो भयानक से भयानक रोग भी दूर हो सकता है यह एक अद्भुत सत्य है। इसमें तो कोई विशिष्ट व्यय भी नहीं होता।

बंगाल की स्त्रियाँ प्रायः शंख की चूड़ियाँ पहनती थीं और अब भी पहनती हैं। उनके अनुसार शंख धारण करने पर अन्य स्त्री-पुरुष की दृष्टि का कुप्रभाव प्राय: उन पर नहीं होता। सांख्यदर्शन में भी इसी का संकेत करते हुए लिखा है- "बहुभिर्योग विरोधी रागादिभिः कुमारीशंखत्। "

(६) जप या पाठ का महत्त्व

प्रत्येक विशिष्ट शब्द एक विशिष्टता रखता है। इसी कारण वेद के शब्दों की आनुपूर्वी में परिवर्तन नहीं किया जाता क्योंकि उसके शब्दों को उसी क्रम से पढ़ने में लाभ होता है। उसी आनुपूर्वी का मेघों पर भी प्रभाव होता है और

वृष्टि हो जाती है। उसी आनुपूर्वी का सूर्य देव पर प्रभाव पड़ता है जिससे वे प्रसन्न होकर लाभ पहुँचाते हैं।जपना १०८ बार क्यों हमारे श्वास प्रत्येक पल में ६ निकलते हैं। २५ पलों के एक मिनट में १५ श्वास हुए। इस हिसाब से एक घंटे में ९०० तथा बारह घंटे में १०८०० श्वास निकले। इनका शतांश १०८ होता है। अतः १०८ बार ही अपने इष्टदेव का जप किया जाता है।

एक रहस्य यह भी है कि माया का अंक ८ है और ब्रह्मन का अंक ८ है। माया में ही परिवर्तन होता है ब्रह्मन में नहीं। माला में १०८ मणियाँ होती है। सूर्य के १२ भेदों को ब्रह्मन के अंक से गुणा करने पर १०८ आता है। १०८ का योग भी १००+८-९ (ब्रह्मन) ही होता है। इस प्रकार सूर्यात्मिक विष्णु का जप गायत्री रूप में १०८ बार ही होना अपेक्षित है।

(७) दिशा - विज्ञान"

प्रत्यगुत्तर शिराश्च न स्वपिति" इस वचन के अनुसार पश्चिम अथवा उत्तर की ओर सिर करके सोने का निषेध किया है। विज्ञान के दृष्टिकोण से देखा जाए तो पृथ्वी के दोनों ध्रुवों में चुम्बकीय प्रवाह विद्यमान है। उत्तर दिशा की ओर धनात्मक प्रवाह रहता हैं और दक्षिण दिशा की ओर ऋणात्मक प्रवाह रहता हैं। हमारे शरीर में हमारे सिर का स्थान धनात्मक प्रवाह वाला हैं और पैर का स्थान ऋणात्मक प्रवाह वाला हैं। यह दिशा बताने वाले चुम्बक के समान हैं कि धनात्मक प्रवाह वाले आपस में मिल नहीं सकते। यदि हम अपने सिर को उत्तर दिशा की ओर रखेंगे तो उत्तर की धनात्मक और सिर की धनात्मक तरंग एक दूसरे से विपरीत भागेगी जिससे हमारे मस्तिष्क में बेचैनी बढ़ जायेगी और फिर नींद अच्छे से नहीं आयेगी जबकि यदि हम दक्षिण में सिर करके सोते हैं तो हमारे मस्तिष्क में कोई हलचल नहीं होती जिससे नींद अच्छी आती हैं।

पश्चिम में सिर करके सोने से पूर्व में पैर हो जाते हैं। "प्राची हि देवानां दिक्" (शतपथ ब्राह्मण) के अनुसार पूर्व दिशा देवताओं की दिशा है क्योंकि ग्रह नक्षत्रादि सभी पश्चिम से पूर्व की ओर गति करते हैं। पूर्व में पैर होने से देवताओं का अपमान होता है। अत: सोते समय दक्षिण व पूर्व की ओर सिर करके सोना चाहिए।

(८) ग्रहण में भोजन का निषेध

सूर्यग्रहण अथवा चन्दग्रहण के समय वायुमण्डल में कीटाणुओं का बहुलता से प्रसार हो जाता है, यह बात अणु वीक्षणयंत्र से देखी जा सकती है। हिन्दु शास्त्रों के अनुसार सब पात्रों में तथा सब वस्तुओं में 'कुश' (डाब) डालने का विधान है क्योंकि कुश डालने पर सब कीटाणु उस कुश पर प्रभाव डालते हैं। आयुर्वेद के अनुसार कुश कीटाणुओं को अपनी ओर आकर्षित करता है।